ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 160-161

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-I, Issues-19, YEAR- March-2021

चाहतों के जुगनू और एक अधूरा आकाश

प्रियेश कुमार तिवारी E-mail: aaryvart2013@gmail-com

Received- 12.02.2021, Revised- 17.02.2021, Accepted - 20.02.2021

सारांश : *हिंदी साहित्य लेखन अब भी एक बाधा दौड़ है। हमारी पीढ़ी की महिलाएं भी जिन्हें अंग्रेजी में मिलेनियल वुमेन या नई सहस्राब्दी की स्त्री कहा जाता है, वे भी यह कहने का साहस नही जुटा पाई हैं कि लेखन उनके लिए प्राथमिकता है. उनकी नौकरियां भले ही हमारे परिवारों ने स्वीकार हों, पर उनका लेखन अब भी उनके माथे पर बल ला देता है। संभवत– उसकी एकमात्र वहज मारे समाज का सामंती ताना–बाना है। नौकरियां जो आर्थिक संबल देती हैं, वह परिवार और समुदाय की समृद्धि में इजाफा करता है जबकि हमारा लिखना, हमारे विमर्श उनकी उन सामंती हवेलियों की नींव खोदना शुरू कर देते हैं. जाहिर में बहुत शालीन पुरूष भी भीतर हमारे लेखन से रूष्ट ही रहता है। 'ये वाला स्त्री लेखन', 'वो वाला स्त्री लेखन', 'अच्छा वाला स्त्री विमर्श', 'बुरा वाला स्त्री विमर्श.....' जैसे जुमले ही हैं जो उन्हें थोड़ी–बहुत तसल्ली दें पाते हैं। इसके अतिरिक्त कोई और वजह नहीं है कि लेखन ने हमारी हिंदी पट्टी की किसी भी स्त्री को अभी तक आर्थिक संबल प्रदान नहीं किया है।*

कुंजीभूत शब्द– हिंदी साहित्य, पीढ़ी, मिलेनियल वुमेन, आर्थिक संबल।

किसी तालाब की जीवन भर का रॉयल्टी एक लेखिका के महीनेभर का खर्च भी नहीं जुटा सकती. अपने आस–पास नजर दौड़ाइए जिन्होंने सिर्फ लेखन किया उन्हें अक्सर अनुकूल पितृसत्ता का जयकारा लगाना ही पड़ता है। अपने धणी, अपने आर्थिक स्रोत के प्रति 'तुम पर गर्व है' की घोषणा उन्हें बार–बार सार्वजनिक तौर पर भी करनी ही पड़ती है। निज में उन्हें क्या–क्या सहना पड़ता होग, इसका अनुमान लगा पाना भी मुश्किल है. वहीं दूसरी ओर जिन्होंने आर्थिक स्वावलंबन और लेखन दोनों को एक साथ स्वीकार किया उनके लिए लेखन बाधा दौड़ ही रहा कभी चला, कभी रूका, कभी रूक–रूक कर चला। दुर्भाग्य से प्रेम और लिव–इन में भी हमारा 'बेस्ट बड़ी' पितृसत्ता के अपने पुरातन जूते उतारने को तैयार हीं हैं। यानी प्रेम भी किसी सजग, चनात्मक स्त्री के लिए मखमल की सेज नहीं है। हमारी कलम इसलिए नहीं रूकती कि हमारे पास कहानी के प्लॉट खत्म हो गए हैं, न ही इसलिए कि हमें कहानी के अनुरूप षिल्प नहीं मिल रहा. बल्कि कभी बच्चों की परीक्षा के कारण हमें अपना लैपटॉप बंद कर देना पड़ता है, तो कभी नौकरी के टारगेट इस ढेड़ी निगाह से हमें देखते हैं कि, 'मैं तो चली छोड़कर, तुम संभालों अपना पोथी पत्तरा' और फिर ये कसमसाहट, ये बेचैनी, रचनात्मक चरित्रों का समय गर्भपात एक असहनीय पीड़ा से भर देता है नींद को तरसती आंखें, देर रात तक जली रहने वाली ऑनलाइन की हरी बत्ती, तनाव, झुंझलाह, अवसाद..... और इनके पीछे–पीछे आते शेष मनोरोग सब इसी बाधा छोड़ की घायल धावक रही हैं। मगर यह सच है कि हमारा आधे से ज्यादा रास्ता वे पर कर चुकी हैं। वे नहीं दौड़तीं, तो हमारी दौड़ और जटिल हो सकती थी. भारतीय परिवेश में स्त्री यौनिकता (ईसा के घर इंसान), सुयोग्य साथी (त्रिशंकु) और असफल रिश्ते के बाद दोबारा प्रेम की जरूरत (आपका बंटी) के जो प्रश्न उन्होंने उठाए, अब हम उन पर और बेहतर तरीके से बात कर पा रही हैं, उनके रचे की एक उल्लेखनीय सफसलता यह भी है कि उन्हें पढ़कर बड़ी हुई मेरी पीढ़ी की स्त्री अब काफी हद तक बोल्ड हो चुकी हैं। यह मान लिजिए कि कल्पनाएं भी हमारी कंडीशनिंग से ही उपजी हैं। जहां यह लगता है कि मजबूत औरतों की पीठ इस्पाती होती होगी। वे जो अपने हक के लिए आवाज उठाती हैं उनका स्वर अक्सर बहुत ऊंचा होता होगा कि जिसकी हुंकार पर तख्तों ताज हिल जाएं। और वे जब चलती होंगी तो आस–पास के सब दृश्य थम जाते होंगे। सयानी बुआ, रानी मां का चबूतरा जैसी कुछ कहानियों को छोड़ दिया जाए तो उनकी ज्यादातर रचनाओं की स्त्री एक पढ़ी–लिखी शहरी युवा स्त्री रही है। उस पर दिल्ली के माने हुए कॉलेज मिरांडा हाउस की प्राध्यापिका. मुझमें घबराहट पैदा करने के लिए इतना ही काफी था। शकुन, रजनी, लेखा, गुलाबों जैसे पात्रों ने मेरी कल्पित उस छवि में भरपूर मसाला भरा था। 'मुड़ मुड़ के देखता हूं' और 'एक कहानी यह भी' ने साहित्य संसार में एक छोटी–मोटी गैंगवार का माहौल तो हमेशा बनाए रखा है। जितना मन्नू जी की बारे में उनकी किताबें और उनकी समकालीन लेखिकाओं के वक्तव्यों से जाना, वे जीवनभर अनुशासन, प्रतिरोध, प्रतिवाद और नाराजगी के बीच जूझती रहीं. उनकी कहानी 'एखाने आकाश नाई' की पात्र लेखा याद आती है। 'मैं हार गई' की खिलंदड़ रचनाकार यहां तक पहुंचते बहुत धीर–गंभीर हो चुकी है. अब उसमें अपनी इच्छा से पात्रों को जिलाने और मारने का साहस नहीं बचा है। बल्कि वह अपने आस–पास मौजूद हर व्यक्ति से सामंजस्य स्थापित करना चाहता हूँ. घर–परिवार, दोस्त, नौकरी और कुछ सपने. वे इन सपनों को समेटकर परिवार में शामिल होना भी चाहे, तो नहीं हो पाती। जुड़े हुए दिखने वाले ये परिवार तो पहले ही अपनी दरारों में बिखरते जा रहे हैं। ये मन्नू जी की खासियत है कि वे एक ही चरना में बहुत सारे

शोध अधेयता– हिन्दी विभाग, अवधेष प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-I, Issues-19, YEAR- March-2021

मुद्दो को उठा पाती हैं। लेखा के जीवन से शुरू हुई यह कहानी कभी सुषमा के पास पहुचते प्रेम, परिवार और आर्थिक आधार के सवाल उठाती है। तो कभी अपने ही पति के बेवफाई पर अकेली रह गई चाची के दुख से मन भिगो देती है। पर अंततः वह लेखा ही की कहानी है, जो सबकी मदद करना चाहती है। वह देवर की पढ़ने–लिखने की आवष्कता को समझती है, तो गौरा के मन में फूट रहे प्रेम की नैसर्गिक उमंग को भी महसूस करती है। पर अंत तक आते–आते उसे लगने लगता है कि यहां सपनों का आकाश है ही नहीं। शहर की जिस दौड़–भाग और दमघोंट वातावरण को छोड़कर वह गांव में खुली आबोहवा की तलाश में आई थी, वह तो यहां है ही नहीं। और यहीं हिंदी के पाठक को वे गांव के नॉस्टेलजिया से मुक्त करती हैं। किसी भी गांव की हवा इतनी जरूरी नहीं कि वह सपनों के आकाश का स्थान ले सके। हम शहर के दमघेंटू वातारण में भी भी रहना चुनते हैं. क्योंकि यहां हमारे सपनों के लिए अवसर हैं। मैं मानती हूं कि व्यक्ति जितना सुविधा और साधन–सम्पन्न होता है, पेड़, पहाड़, दरिया, गांव उसे उतने ज्यादा आकर्शित करते हैं, जबकि घर और बाहर की जिम्मेदारियां एक साथ संभालने वाली स्त्री के लिए तो बारिश भी आधी–अधूरी खुशी लेकर आती है। लेखकों के मनकी जलवायु यूं भी अति–विषम रहती है। यहां जब प्रेम का कोहरा छाता है तो खूब घना छाता है और जब यथार्थ की धूब चटकती है तो वह भी इतनी तेज होती है कि सर से पांव तक तपा देती है। हम जो होना चाहते हैं और जो हो जाते हैं, वह व्यष्टि और समश्टि की इसी अति–विषम जलवायु का ही परिणाम है। स्मुतिलोप इसकी सबसे घातक त्रासदी है. मैं खूब लिखना चाहता हूं और इसी जनम में लिखना चाहता हूं, निर्मला भुराड़िया जी को दिए एक पुराने साक्षात्कार में उन्हें यह कहते हुए सुना था. चाहत के इन जुगनुओं को जिस आकाश में चमकना था, वह आकाश हम स्त्रियों के हिस्से अधूरा ही आता है। सारा आकाश नापने की प्राथमिका के लिए अब भी हमारे पास अवकाश नहीं। इस सबके बावजूद उनकी 90 वर्ष की उम्र और अथाह साहित्य इस गर्व से भी भर देता है कि सब बाधाएं एक कुशल धावक की गति के आगे बौनी ही साबित होती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मन्नू भंडारी : ''महाभोज'' सन् 1979.
2. जगदीश चन्द्र : धरती धन न अपना
3. मोहन नैमिशराय : अपने–अपने पिंजरे (भाग–एक 1995 ई0 भाग–दो सन् 2000).
4. ओम प्रकाश बाल्मिकी : जूठन सन् 1997.
5. सूजन पाल चौहान : तिरस्कृत सन् 2002.
6. डॉ. तुलसी राम : मुर्दहिया सन् 2010.
7. राहुल सांकृत्यायन : वोल्गा से गंगा तक।
8. उग्रः फागुन के दिन चार।
9. रांगेय राघव : कब तक पुकारूं।
10. फणीश्वर नाथ ''रेणु'' : मैला आँचल, परती परिकथा, पल्टू बाबू रोड।
11. अमृतलाल नागर : सतरंज के मोहरे, अमृत और विष।
12. उदयशंकर भट्ट : लोक–परलोक।

*****